किरणों की खोज में

सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन

सरस्वती प्रेस
वाराणसी इलाहाबाद

प्रकाशक—
श्रीपतराय
सरस्वती प्रेस वाराणसी

मूल्य दो रुपये

मुद्रक—
[illegible] शर्मा
ज्योतिष प्रकाश प्रेस वाराणसी।

भूमिका

प्रस्तुत पुस्तक में जिन दो यात्राओं का वर्णन है, कालानुक्रम से उनमें से पहली 'किरणों की खोज में' की गयी यात्रा है। सन् १९२९ में बी० एस-सी० परीक्षा पास करने के बाद लेखक पंजाब विश्वविद्यालय द्वारा अनुमोदित 'कास्मिक रे एक्सपेडिशन' का सदस्य हो कर कश्मीर गया था। इस अभियान के नेता लेखक के विज्ञान के आचार्य, फारमन कालेज लाहौर के प्रोफेसर जेम्स मार्टिन बेनेड थे।

परशुराम से तूरखम की यात्रा के तीन सोपान थे। पहला शिलङ् से परशुराम कुण्ड और वापस, सन् १९४४ के जाड़ों में, दूसरा शिलङ् से जालन्धर सन् १९४५ के ग्रीष्म में, और तीसरा जालन्धर से तूरखम (खैबर घाटी) कोहाट और वापस दिसम्बर १९४५ जनवरी १९४६ में। ये तीनों यात्राएँ लेखक की सैनिक सेवा से सम्बद्ध थीं, लेखक सन् १९४३-४६ में भारतीय सेना में कप्तान के पद पर रहा।

सन् १९२७-१९३० में लेखक लाहौर में पंजाब विश्वविद्यालय का छात्र था। नवम्बर १९३० में क्रान्तिकारी आन्दोलन के सम्बन्ध में वह बन्दी हुआ और सन् १९३४ तक जेल में रहा। तदुपरान्त दो वर्ष नजरबन्द भी रहा।

प्रस्तुत पुस्तक के दोनों वृत्तान्त 'अरे यायावर रहेगा याद?' नामक ग्रन्थ के अंश हैं, जो सन् १९५३ में प्रकाशित हुआ था।

—प्रकाशक

सूची



कहते हैं कि सृष्टि की सर्वोत्तम आकृति चक्र है—क्योंकि उस का आदि-अन्त कुछ नहीं है। मैं देश की भिन्न भिन्न सँकरी-चौड़ी, कच्ची-पक्की, ऊबड़-खाबड़ सड़कों पर टकराते-टकराते अनेक बार सोचा है कि चक्राकृति में सौन्दर्य के लिए बहुत अधिक नम्बर चाहे न भी पाऊँ, अपनी आदि-अन्तहीन गति-क्षमता का गर्व तो कर ही सकता हूँ—और यह भी कह सकता हूँ कि स्वयं सुन्दर न हो कर भी मैं संसार के अखिल सौन्दर्य की नींव हूँ, क्योंकि मैं संस्कृति की नींव हूँ। संस्कृति और सभ्यता के विकास में अग्नि के अवतरण के बाद जो दूसरा सीढ़ी मानव प्राणी चढ़ा, वह मैं हूँ। या यों कह लीजिए कि देवताओं के समुद्र-मन्थन से जैसे सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि अमृत की हुई, उसी प्रकार मानव मन-रूपी महासागर के मन्थन से जो श्रेष्ठ नवनीत प्राप्त हुआ, वह है चक्राकार की उद्भावना।

यह मैं कह रहा हूँ तो चक्र मात्र के साधारण प्रतिनिधि की हैसियत से, नहीं तो व्यक्ति रूप में मैं एक अकिंचन यायावर हूँ, और अपने ही जैसे यायावर 'श्री इन पंक्तियों के लेखक जी' का सहारा—क्योंकि मैं उन की गाड़ी का एक टायर हूँ।

और मैं जो राम कहानी कहूँगा, वह भी मेरी राम कहानी इसी लिए है कि वह मेरे चालक की कहानी है। अपने अनुभव को दूसरे के—अपने मालिक के—इतिवृत्त के रूप में कहना हो तो सर्वथा-संगत है। वैष्णव भक्त राधा और कृष्ण के जीवन में अपने राग विराग लाद देते थे, मैं अपने प्रतीक पुरुष को ही आधार बनाता हूँ। तुलना आप को बड़बोलापन लगे तो यह न भूलिए कि जैसा मुराद होगा, वैसा ही पीर होगा, उस से बचा कहाँ से आयगा!

मिस्टर पीटर रोलिंग स्टोन
हैव यू एनी मॉस ?
नो सर नो सर आइ' म
रनिंग एज ए क्रॉस !

अपने प्रतापी पुरुष को मिस्टर रोलिंग स्टोन नहीं कहूँगा, यायावर कहूँगा पर बात वही है—

चल चल देता है लाद-लाद कर बार बार बनजारा
सब ठाठ धरा रह जाता धन बस दूर क्षितिज का तारा !

यायावर को भटकते चालीस बरस हो चले, किन्तु इस बीच न तो वह 'अपने पैरों तले घास (या मॉस !) जमने दे सका है', न कुछ ठाठ जमा सका है न क्षितिज को कुछ निकट ला सका है—उस के तारे को छूने की तो बात ही क्या ! किंतन स्वप्न उसने देखे जहाँ बैठ कर ऋषियों ने देहों पर दीमकें उगा लिये जहाँ मुनि तपस्या करते करते पाषाण हो गये जहाँ देवता नम कर पर्वत शृंग बन गये, वहाँ मानवों ने ऐहिक कामनाओं-वासनाओं से मुक्ति पायी—किन्तु यायावर ने समझा है कि देवता भी जहाँ मन्दिर में रुके कि शिला हो गए, और प्राण-संचार के लिए पहली शर्त है गति, गति, गति ! बचपन में चीनी कहावतों के एक संग्रह में जिस वाक्य ने उस सब से अधिक प्रभावित किया था और जिसे उसने अपना गुरुमन्त्र मान कर डायरी के मुख पृष्ठ पर लिख लिया था, वह था

मैं क्या चाहूँ कि मेरी अस्थियाँ भी मेरे पुरखों की अस्थियों के साथ एक सुरक्षित समाधि-स्तूप में दबी रहें ? नहीं भी कोई चला जाने, वहीं कोई हरा भरा पहाड़ी मिल जायगा'

पूर्व—असम[1]

यायावर को असम में जब नागरी की भटकन की मिली, तब उसे लगा मानो क्षितिज का तारा कुछ निकट आ गया है। किन्तु जब जापानी

---

१ आसाम नहीं असम असामी नहीं, असमीया। —ले०

अभिवादन किया और पहाड़ सा ऊपर गिर गया और काम का दबाव भी कुछ हल्का पड़ा, तब उसने समझ लिया कि जल्दी ही इस सीमान्त में स्थानान्तरित होना होगा। इसी लिए जब पूर्वी सीमा प्रान्त के या पूर्वोत्तर प्रान्त का दौरा उस के हिस्से पड़ा, तब उस ने तत्परता से स्वीकार किया, और दौरे के प्रोग्राम में कई ऐसे भी स्थान जोड़ लिये जो प्राय दौरा करने वाले अफसरों की सूची में छूट जाया करते हैं—चाहे इस लिए कि 'वहाँ भला क्या काम होगा?' या चाहे इस लिए कि 'कौन आफत का मारा वहाँ जायगा?' मन ही मन यह भी ठान लिया कि दौरे पर ही 'अपने कार्यक्रम को तात्कालिक आवश्यकतानुसार बदल सकने' के अधिकार का भरपूर उपयोग किया जायगा—क्योंकि दौरे की पटरी से कुछ इधर या कुछ उधर या कुछ आगे हो तो कैसे-कैसे स्थान पड़ते हैं!

यायावर को इस बार जो ट्रक मिला, उस की हालत बहुत अच्छी न थी। बल्कि उस में एक टायर ही वह ऐसा था जिस का भरोसा किया जा सके, तो इसे मेरी आत्मश्लाघा न समझा जाय। इंजिन अठारह हजार मील रन कर चुका था—और अठारह हजार फौजी मील कितने लम्बे होते हैं, यह भुक्तभोगी मिलिटरी गाड़ियाँ ही जानती हैं!—काँच सब टूटे हुए थे, कारबुरेटर खराब था, तार गल गये थे, गैरा बदलने लायक थी, डायनमो बीच बीच में काम करना छोड़ देता था, ब्रेक कमज़ोर थे तिस पर यायावर को रात में गाड़ी चलाने का व्यसन है, और वह बहुधा दूर-दूर की मार्गों श्राम का रास्ता जिस से पार रात के सन्नाटे में सारी सड़क पर निर्बाध अधिकार हो, कहीं रुकना न पड़े, पटरी से उतरना न पड़े, किसी की धूल न फाँकनी पड़े, और शान्ति से सोचा जा सके, नयने फुला कर कामरूप रात का रहस्यमयी सुगन्ध ली जा सके, जब-तब बीच राह में चौक कर रुके हुए किसी वन्य जन्तु की चमकती अंगार आँखें देखी जा सकें, फिर वह चरख हो, कि लोमड़ी सियार, कि बन बिलार कि बघेला और रात की दौड़ में एक यह भी सुविधा था कि कभी कभी रैन बसेरे की समस्या अपने-आप हल हो जाती थी।

किन्तु इस ट्रक के साथ रात की दौड़ कैसे हो? यायावर को चिन्ता नहीं। वह गाड़ी स्वयं चलाता है, शुक्ल पक्ष की रातें हैं, उस के शरीर में शायद विटामिन कैरोटिन यों भी यथेष्ट है क्योंकि बत्ती जलाये बिना गाड़ी दौड़ाने में उस की आँखों को कोई कष्ट नहीं होता। बल्कि वह स्निग्ध अँधेरा तो विचार का सहायक है—और चाँदनी में पूरा प्रदेश दीखता है जब कि बत्ती जलाने से केवल सड़क दीप्त हो उठती है और परिपार्श्व पर कालिख पुत जाती है!

तिनसुकिया से आगे कोई पड़ाव नहीं है तो क्या हुआ? यायावर के पैर में चक्कर है, दिमाग में चक्कर है, भ्रामरी योग में उसने जन्म लिया है और सनीचर की साढ़ेसाती चल रही है—क्या भटकानेवाली इतनी शक्तियाँ उस को रुकने घड़ी भर को चैन न देंगी? कब उस उत्तर पूर्व का सीमान्त फिर छूना मिलेगा, कब फिर ब्रह्मपुत्र की समतल यात्रा का आरम्भ बिन्दु, परशुराम का तपोवन और कुण्ड, कुण्डिनपुर के उन महलों के अवशेष जहाँ बैठ कर रुक्मिणी ने कृष्ण की प्रतीक्षा की होगी, गैंडे, हाथी और मिथुन (अरना भैंसा) द्वारा सेवित कदलीवन, आबोर और मिश्मी और खामती वन्य जातियों के आवासस्थल सदिया सीमाप्रदेश के दुर्भेद्य जंगल देखने को मिलेंगे? और चार पाँच दिन बाद ही तो माघ पूर्णिमा है, जिस दिन परशुराम कुंड पर मेला लगता है। निस्सन्देह यायावर का मान्या के स्थिर ट्रैक में जाना बहुत जरूरी है, वहाँ उसे बहुत काम है और उस के लिए दौरे के प्रोग्राम में हेरफेर करना ही होगा!

सखुआ घाट असम रेल की छोटी लाइन का उत्तर पूर्वीय अन्तिम स्टेशन है। तिनसुकिया से पचास पचपन मील रेल की पटरी के साथ साथ सड़क जाती है। राह में डमडुमा की अमरीकी छावनी और फिर एक बड़ा चाना गिरि छोड़ कर अनेक चाय बगान, नदी-उपनदी और बेंत के झुण्ड पार कर के सखुआ घाट का नैगम पड़ता है। किन्तु कोई समझे कि घाट पहुँचते ही नदी मिल जायगी तो भूल करेगा, यद्यपि

नाम को घाट क बाद स नदी का पाट आरम्भ हो जाता है। दो तीन मील और आगे बन्दर फिर सडक खा जाती है और मीलों रेती म चलना पडता है, तब जा कर कहीं ब्रह्मपुत्र का उतारा मिलता है, जहाँ गाडी नाव पर लाद कर पार लगायी जाती है। पार उतर कर फिर दो-तीन मील रेती, और फिर सडक पर चढ कर सदिया का छोर मिल जाता है, कुछ आगे बाजार है और बायें को मुड कर दो तीन मील जा कर सदिया का दुर्ग, छावनी और कचहरी आदि

यायावर का ट्रक सर्किट हाउस पर जा रुका। मुझे तब विश्राम मिला यायावर ने कमरे म सामान जमाया और नक्शा ले कर बैठा। शाम को अंग्रेज पोलिटिकल एजट से मिल कर 'भीतरी सीमा' के पार क प्रदेश म जाने का परमिट लिया और बाकी तैयारी अगले दिन पर छोड दी, ताकि इस बीच ट्रक की ओर मेरी कुछ खातिर कर ली जाय

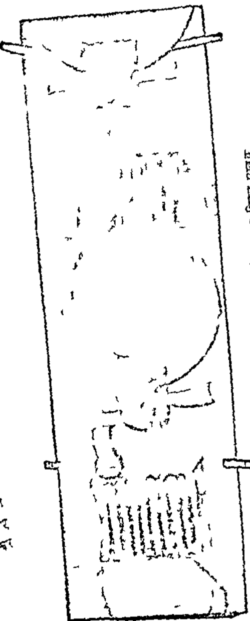
सदिया सीमा प्रदेश तो है ही, यहाँ का पोलिटिकल एजेंट सीधे गवनर क अधीन होता, और उस क तथा सदिया के सैनिक कमाण्डर क हाथ में सपूर्ण शक्ति केन्द्रित होती। भारत म ब्रितानी शासन को दृढ करने म किस तरह सीमा प्रान्तों या 'पिछडे' प्रदेशों क पोलिटिकल एजेंटों और इसाई प्रचारकों का चोली दामन का साथ रहा है, इस के अध्ययन के लिए असम क सीमा प्रदेशों का-सा क्षेत्र और न मिलेगा। यायावर प्राय कहा करता कि देश की पराधीनता सब से अधिक अखरती है तो एक अपन हिमालय क अंग, ससार के सब से ऊँचे शिखर का नाम 'एवरेस्ट' सुन कर, और एक सीमा प्रदेशों में जाने क परमिट क लिए फिरगी पोलिटिकल एजेंट क दफ्तर म जा कर। देश की प्रत्यक सीमा तीर्थ होता है, नहीं तो देश पुण्यभूमि कैसे होता है? पर अपने ही तीर्थ तक जाने क लिए पर देशीय सत्ता के अहम्मन्य प्रतिनिधि का मुँह जोहना जैसा चुभता है, उसे भुक्तभोगी जानते हैं

सदिया मन्दिर ट्रैक म भी दो सीमाएँ हैं। एक भीतरी सीमा, एक सीमा। यों तो सदिया में घुसने वाले प्रत्येक व्यक्ति का आने का कारण,

ठहरने की अवधि आदि ब्यौरा देना पड़ता है, पर भीतरी सीमा तक जाने के लिए व्यक्ति को और अधिक कुछ नहीं करना पड़ता। किन्तु इस सीमा के पार जाने के परमिट पोलिटिकल एजेन्ट स्वयं देता है, और वह सब या सब के लिए सहल नहीं होता। माघ मेले के समय परशुराम जाने वाले यात्री जा कर उसी दिन लौटने का, या रात भर ठहरने का परमिट तो फ़ीस दे कर पा लेते हैं, अन्य समय या अन्य प्रकार के परमिट के लिए पूरी जाँच होती है। सदिया से लगभग चालीस मील आगे टामेई तक मोटर जाती है, परशुराम के लिए फिर टामेई घाट पर ब्रह्मपुत्र (जो यहाँ पर लुहित कहलाती है, इसी का संस्कृत नाम जो महाभारत में मिलता है लौहित्य है) पार कर के चार-पाँच मील पैदल जंगल पार करना पड़ता है। किन्तु ग्यारह तीस मील जा कर ही भीतर सीमा पर पहुँच जाते हैं।

सदिया से तीन चार मील जा कर ही ब्रह्मपुत्र की एक उपनदी पार करनी पड़ती है, जो अब कुंडिल कहलाती है। प्रसिद्धि है कि इसी नदी के किनारे कुंडिनपुर की राजधानी थी, और यहीं से रुक्मिणी को लेने कृष्ण आये थे। पुराने रिपोर्टों से पता चलता है कि इस शताब्दी के आरम्भ में भी यहाँ 'अति प्राचीन' परकोट आदि के खंडहर थे, किन्तु जहाँ इन के पाये जाने का वर्णन था, वहाँ पर नयी सर्वे के नक्शों में लिखा है 'इम्पनट्रेबल फारेस्ट'—अभेद्य जंगल! और यह अभेद्यता कायोचित अतिरंजना नहीं, यह यायावर ने स्वयं परख कर देख लिया। इस नदी पर पुल नहीं है और गाड़ी को नावों पर लाद कर पार करना पड़ता है तब तक यह हो तब तक यायावर ने नदी मार्ग से उस जंगल में घुसने की सोचा, क्योंकि स्थल से दुर्भेद्य ब्याड डोंगी में बैठकर जाने वाले के लिए उतना दुर्भेद्य नहीं रहता पर जल्दी ही उसने समझ लिया कि दो चार दिन की फ़ुरसत न हो तो पड़ताल करना भी व्यर्थ है

❀ ❀ ❀ ❀



पहाड़ी गाइगाँ—झोपड़े के किवाड़ पर मंगलसूचक मिटू मस्तक

कदली-वन

जिसने वह नहीं देखा, वह नहीं मानेगा कि संस्कृत काव्यों में कदली-वन में विचरते हाथियों का जो वर्णन मिलता है, वह अक्षरशः सत्य हो सकता है। जंगली ही नहीं केले इतने बड़े जगह कि न घने मोटे दोनों कर भी पार न हों और उन की चिकनी,गहरी,हरी छाहों में कहीं हाथियों के झुंड, और कहीं नंगी नागी नर्तों मे घूमते मिटून

मिटून अपना भला ही होता है, किन्तु अपने भैंसे से कहीं अधिक गठे शरीर वाला और फुर्तीला वन्य जातियाँ सभी मिटून को पूज्य मानती हैं, कुछ जातियाँ अपने को मिटून कुलोत्पन्न बताती हैं और मिटून को अपना पूर्वज मान कर पूजती हैं। कहीं कहीं भी। मिटून पालते भी हैं

बारह एक मील जाकर होल गाँव का छोटा पड़ाव था, जहाँ अमरीकी सैनिकों ने शायद रेडियो चौकी बना रखा था। पालिटिकल एजेंट ने बताया था कि यहाँ के सैनिकों ने मिठून के धोखे में मिश्मियों की कुछ भैंसे मार डाली थीं फिर एजेंट के बीच बचाव कर के हरजाना दिला कर किसी तरह निपटारा हो सका था। अमरीका प्राय किसी के मुल्क में किसी को मारते और फिर हरजाना भरते रहते थे। जहाँ ऐसी घटना या घटनाएँ हो जायँ, वहाँ कुछ देर के लिए खाकी वर्दी बहुत अप्रिय हो जाती—क्योंकि वनवासियों के लिए सब फौजी एक हैं, फिर फौजियों में आपस में भले ही यह हो कि अंग्रेज अमरीकी को मूर्ख कहे, अमरीकी अंग्रेज को असामाजिक, या हिन्दुस्तानी एक को दम्भी और एक को आवारा! तभी यायावर इस प्रदेश में विशेष सतर्क भाव से मोटर चला रहा था। कुछ राह चलते मिश्मियों ने हाथ उठा कर गाड़ी रोकी तो उसने रुक कर चार छः को पीछे बिठा तो लिया, और मुड़-मुड़ कर उन की ओर का उन्हीं की-सी खुली चौड़ी हँसी हँसता रहा, पर मन ही मन सोचता रहा कि इन के कंधों पर कसे हुए तार धनुष और कमर से खोंसे हुए खाँडे किस किस काम आ सकते हैं पर अपने-अपने पड़ाव पर ये आगन्तुक उतरते गये और एक अद्भुत मूर्धन्य स्वर में धन्यवाद दे कर और हँस कर चलते गये फिर के बाद जब अन्तिम कुछ मील के जंगल में प्रवेश हुआ, तब उस की अत्यन्त ऊँची-नीची झाड़ और कीचड़ को फिसलन भरी कच्ची सड़कें पार करने के लिए ट्रक में रह गये केवल यायावर, उस का अनुचर जीतबहादुर लामा, और कुन्दनसिंह जो कभी दिल्ली में नगरपालिका (म्युनिसिपैलिटी) का महतर था, किन्तु यायावर के साथ पहले अर्दली हुआ था और फिर ट्रक का क्लीनर—जिस के लिए वह वेतन पाता था नामित्र ड्राइवर का—और जिस को अगर कोई कभी 'ड्राइवर साहब' कह कर आवाज दे देता तो वह ऐसा विभोर हो कर झूमने लगता मानो अब गिरा, अब गिरा

जंगल पार कर के पहाड़ के तल जा कर बनाये हुए एक फाटकघर के नीचे ट्रक रुका। यह गामद का पड़ाव था, जहाँ से उत्तर का एक

रास्ता सीमा (उत्तरी बर्मा) को जाता है। कभी यह भारत और चीन को जोड़ने वाला एक मार्ग रहा होगा, पर अब नहीं। उन दिनों अवश्य इस की नयी 'सर्वे' हुई थी और सड़क बनाने का विचार हो रहा था, आरम्भ का कुछ अंश बना भी था। पड़ाव से कुछ आगे ही मिश्मियों की छोटी सी बस्ती थी, वह एक नंग धड़ंग बच्चे आ कर ट्रक को देखने लगे। दो-तीन फर्लांग जा कर लोहित का किनारा मिला। नदी यहाँ वेगवती थी, निर्मल जल में नीचे पत्थर दीख पड़ते थे, पर यहाँ भी उस का रूप वैसा था जैसा पहाड़ छोड़ने पर नदी का होता है—लगभग वैसा जैसा हृषीकेश में गंगा का है—यद्यपि यहाँ के जंगल की तुलना नहीं है।

नद पार कर के चार मील जंगल का रास्ता।

जंगल में बीच बीच में खुला घास भरा प्रदेश आ जाता, जिस में महाकाय सेमल के धवल-गात पट मानों आगमिष्यत् रक्त प्रसूनों की सुर गाती हुई पूर्वानुभूति से कम्पित हो रहे थे और कहीं कहीं किंशुकों के झुरमुट। कुछ ही दिन में इन में आग खिल जायगी पहाड़ियों के पादप को चिपटती हुई, लपलपाती एक के बाद एक रूख को लीलती हुई ऊपर तक फैल जायगी, और ब्रह्मपुत्र का बालुका के पीले उत्तरीय में लिपटा हुआ नील गात, मानों वसन्त श्री के लाल चुम्बनों से मुद्रांकित हो उठेगा! फिर धीरे धीरे मद उमगेगा और उस का उद्बुद्ध पौरुष आसपास के प्रदेश को लील लेना चाहेगा—लील लेगा—और अपनी सफलता के खेद से खिन्न और गँदला हो उठेगा

किन्तु रूपक को और दूर तक खींचना आवश्यक नहीं है, चट्टानों के बीच की गली से हो कर यायावर एक कुछ खुली जगह पहुँच कर ठिठक गया है। सामने परशुराम का कुंड है।

❀ ❀ ❀ ❀

कुंड वास्तव में ब्रह्मपुत्र की धारा का ही एक आवर्त है। नद जब समतल भूमि में प्रविष्ट होता है तब, मानो महासागर में अपनी चरम

निष्पत्ति की खोज में अभिनिष्क्रमण का निश्चय कर के भी, एक बार वह पीछे मुड़ कर महान् स्थिर-चेता हिमालय का दर्शन कर लेना चाहता है जिस के आश्रय में उस ने अपनी लगभग आधी यात्रा हँसते-खेलते उछलते-कूदते हो तय कर ली है। मंडलाकार घूम कर, हिमालय की चरण रज ले कर, फिर वह धीर गति से आगे बढ़ जाता है। आवर्त के दाहिनी ओर, जहाँ धारा पहले टकराती है, कुछ ऊँचाई पर पहाड़ के पार्श्व से एक सोता फूटता है जिस का जल आ कर कुंड में पड़ता है, यह सोता ब्रह्म धारा है। यात्री ओर जिस शिखर के पर घूमता हुआ ब्रह्मपुत्र आगे बढ़ता है उस पर एक छोटा सा मंदिर है। यायावर वहाँ खड़ा हो कर दृश्य देखता है, वहीं पास जस्ते की चादर और लकड़ी की कई एक कोठरियाँ हैं, जहाँ यात्री रात में ठहर सकते हैं।

यायावर ठिठक कर देखता रहता है। इसी तरह कभी परशुराम भी वहीं पर ठिठक कर क्षण भर दृश्य को देखते रह होंगे, और तब उन्होंने जाना होगा कि उन का स्वप्न ठीक था और यहाँ उन की आत्मा शान्ति पायेगी। तब उन्होंने नीचे उतर कर स्नान किया होगा और मनस्ताप मिटाने का उपक्रम करने से पहले शरीर की क्लान्ति धोयी होगी

कथा है कि पिता की आज्ञा से मातृ-वध करने के पश्चात् परशुराम के मन में ग्लानि हुई, और वह पिता के आश्वासन देने पर भी अपने को मातृघात के महापातक से मुक्त न मान सके। बहुत तपस्या कर के भी जब उन के मन से पाप का कलुष न धुला, तब एक दिन भगवान् ने उन्हें स्वप्न में दर्शन दे कर उन्हें ब्रह्मपुत्र के इस कुंड में स्नान करने का आदेश किया और कहा कि वहाँ तपस्या करने से उनके मन का परिष्कार होगा। परशुराम खोजते हुए इस स्थान पर पहुँचे कुंड में और फिर ब्रह्मधारा के नीचे स्नान कर के उन्होंने तपस्या की और पाप के भार से मुक्त हुए।

यायावर ने कुंड में और फिर धारा के नीचे स्नान किया। कुंड का जल कंपकंपा देने वाला है, धारा का जल गर्म। अतः इसी क्रम से स्नान करना

अत्यन्त सुन्दर प्रतीत होता है। स्नान से पाप धुल जाते हैं, पाप तो टालते नहीं, अत उनके हृदय प्रतीक के रूप में निज वस्त्रों से स्नान किया जाता है उन्हें कुंड पर ही छोड़ देने की प्रथा है। इस सरल उपाय से यात्री अपने पाप वहाँ छोड़ कर चले आ सकते हैं। यायावर जब गया तब तो कुंड पर सन्नाटा था, पर संक्रान्ति आदि के स्नानों पर जब मेला लगता है, तब मुमुक्षुओं से अधिक उत्साह उनके पाप मोचन के लिए वहाँ जुटे हुए भिखमी स्त्री पुरुष दिखाते हैं। मुमुक्षु नहा कर निकले निकले कि मुक्ति पथ के ये सहायक उस का धोती-गमछा लंगोट जो कुछ हो खींच लेते हैं, और कभी कभी मुमुक्षु को उस परम निष्पाप अवस्था में ही अपने सूखे कपड़ों तक जाना पड़ता है। इस का विरोध सम्भव नहीं है, यही रीति चली आयी है। और सभ्य मुमुक्षुओं के पाप का बोझा इस प्रकार के द्वारा दान का अधिकार सदा से असभ्य उपत्यका-वासी भिखमियों का रहा है। विकसित नागरिक सभ्यता के पापों का बोझ अविकसित वन्य जातियों द्वारा ढोया जाता है। इस सत्य की यह रीति स्वयं कितना अर्थपूर्ण प्रतीक है, इस का और कदाचित् दोनों ही पक्षों का ध्यान कभी नहीं जाता होगा!






ट्रक तक पहुँचते न पहुँचते दिन छिप गया। गाड़ी का डायनेमो चार्ज नहीं करता अत बत्ती तो जलायी न जायगी, अँधेरे में ही गाड़ी चलाना होगा। जितनी जल्दी हो सके, जंगल का पहला बहुत घना और कीचड़ वाला खंड पार कर लिया जाय, उस के बाद पक्की सड़क पर रुक कर वहाँ चाय बनायी जायगी और फिर चाँद उठ आने पर आगे बढ़ा जायगा।

जंगल पार हो लिया गया। बीच में कहीं कहीं मार्ग पर रास्ते से थोड़ा भटक कर फिर उलटा लौट कर पथ खोजना पड़ा, किन्तु विशेष असुविधा न हुई।

पक्की सड़क पर आ कर जल्दी जल्दी चाय पी गयी। चाँद निकल आया, और रास्ता तथा वन्य प्रदेश कुछ साफ दीखने लगा, पर गाड़ी चलाते ही हल्की-सी धुन्ध छाने लगी और दीखना असम्भव हो गया।

धीरे धीरे चलते रहे। आधा रास्ता तय हो चुका था, और कुछ मील जा कर होलोगाँव आयेगा जहाँ अमरीकी ठिया है और पास ही जंगलों के विभाग का बँगला।

हठात् स्टियरिंग लड़खड़ाया और एक शब्द हुआ, जिस का हिन्दी अभिधा 'धड़ाम' से बँगला के ध्वन्यनुसारी 'फटास्' में कहीं अधिक सजा वता है। पंक्चर! यायावर ने पहले स्टियरिंग सँभाल कर फिर ब्रेक लगा दिये, गाड़ी रुक गयी।

पहिया देखा गया। अन्धकार में औजार निकाल कर टटोले गये जैक को धुरी के नीचे रखा गया। जैक नीचा था, नीचे जमीन भी पोली थी, उसे जमाने लिए पत्थर की जरूरत होगी। यायावर ने कुन्दनसिंह को पत्थर ढूँढ लाने के लिए कहा, और स्वयं स्पैनर ले कर नये पहिये को खोलने लगा।

नया पहिया पंक्चर वाले पहिये के साथ टिका दिया गया। ढिबरियाँ को एक-एक चक्कर घुमा कर नरम कर लिया गया अब धुरी उठे तो पहिया खोला जाय। पर कुन्दनसिंह का कोई पता नहीं। यायावर ने थोड़ा प्रतीक्षा की, फिर भुनभुनाते हुए जा कर स्वयं पत्थर ढूँढने लगा। पत्थर ले कर लौटा तब भी कुन्दनसिंह का कोई चिह्न नहीं था। यायावर ने पत्थर जमा कर जैक उठाया, और पहिये की ढिबरियाँ खोलने लगा। स्पैनर के एक-एक चक्कर के साथ-साथ उस का पारा एक-एक डिगरी चढ़ता जा रहा था।

सब ढिबरियाँ खोल कर जब पहिया गिराया गया तब अपने बड़े पौडों बूटों का दनदनाता हुआ दो पत्थर उठाये कुन्दनसिंह धुन्ध में से अवतीर्ण हुआ। यायावर ने दाँत पीस कर कहा, 'मिल गये तुम्हें पत्थर?

उजड्ड की मुस्कान परमात्मा है, वह मुस्कान जो स्पष्ट बता देता है कि जब मुझ में अपना दोष समझने की ही बुद्धि नहीं तब आप का क्रोध कैसे समझूँ।

वही मुस्कान कुन्दनसिंह के चेहरे पर था। खाँस-खँखार कर बोला, 'जी, जरा ठहर गया था।"

यायावर और भी क्रुद्ध स्वर में कुछ कहने ही जा रहा था कि कुन्दनसिंह ने वैसे ही कहा, "जरा साँप लड़ गया था।"

यायावर अवाक्। साँप काट गया। 'गया' नहीं, 'गया था'। वह भी 'जरा'। थोड़ी देर बाद उसे ध्यान हुआ कि इतनी देर में उसने कुछ कहा ही नहीं है कुछ कहना जरूरी है। पर कहे क्या इस आदमी को? अपनी असमर्थता पर गुस्सा ही उसके प्रश्न में प्रकट हुआ, "साँप मर गया कि नहीं?"

इस प्रश्न का अर्थ कुन्दनसिंह की बुद्धि के स्पष्टतया बाहर था। उसने अचकचा कर कहा, "जी?"

"तुम को जिस साँप ने काटा, वह मर गया कि नहीं? कम-से कम दाँत तो टूट गये होंगे?" कहता हुआ यायावर भी उठा। ट्रंक में से पकी खोल, माचिस, मोमबत्ती, दवा का बक्स आदि निकाल कर कुन्दनसिंह की टाँग देखने पर मालूम हुआ कि साँप ने जीन की पट्टी के ऊपर से काटा था, दाँत हल्के लगे। चाकू से निशान जरा खोल कर उस में दवा मल दी गयी, फिर पहिया फिर कर के गाड़ी चली। रात बारह बजे के लगभग कुटिल नदी पार कर के थोड़ी देर में सदिया पहुँच गये। सर्किट हाउस में जो तेल का लैम्प जल रहा था, उस की दीप्ति ऐसी लगी, मानो कभी उतना प्रकाश न देखा हो। साथ ही उस 'ठीक ठिकाने' के कमरे में दिन भर के जंगल के दृश्य मानो स्वप्न की तरह खो गये—वैसे ही बहिष्कृत हो गये जैसे फिरंगी पॉलिटिकल एजेंटों के दफ्तरों से वनवासी फरियादी तान्ति कर दिये जाते होंगे।

लेकिन यायावर के मन में जो जंगल की पुकार गूँजती है, उसे सर्किट हाउस के कमरे की दीवार नहीं रोक सकती

❀ ❀ ❀ ❀

सदिया का प्रदेश कामरूप के इतिहास के कई स्मारक अपने गहन वनों में छिपाये है। कुछ की झाँकी जब तब मिलती रहती है, कुछ कभी देखे जा सकते थे लेकिन अब बिल्कुल ही लुप्त हो गये हैं। सदिया भी प्राचीन 'कुण्डिया' शब्द का अपभ्रंश है, जो स्वयं कदाचित् महाभारतकालीन राजा भीष्मक के वंश के ह्रास के बाद खण्ड हुआ था। प्राचीन इतिहास की शोध में यहाँ जाना अनावश्यक है, किन्तु सदिया की व्युत्पत्ति मनोरंजक है।

कथा है कि भीष्मक का एक वंशधर बीरपाल (अथवा जारवर) सोनागिरि का राजा था। उस की रानी रूपवती ने पुत्रलाभ के लिए कुबेर की स्तुति की। कुबेर एक दिन उस के पति का रूप धारण कर रूपवती के पास आये। रूपवती ने उन्हें नहीं पहचाना और उन के साथ रमण किया। अनन्तर बीरपाल को कुबेर ने स्वप्न में दर्शन दे कर आदेश किया कि एक वृक्ष विशेष के नीचे जा कर देखे, वहाँ जो कुछ उसे मिले उसे पूज्य मान कर ग्रहण करे। बीरपाल वृक्ष के नीचे गया, वहाँ उसे एक तलवार, एक ढाल, और ढाल से ढकी हुई एक सोने की डिब्बी मिली। कालान्तर में रूपवती ने पुत्र प्रसव किया जिस का नाम गौरीनारायण रखा गया। यही कुमार पुनः गौरीनारायण बीरपाल के बाद राजा हुआ और रत्नध्वज पाल के विरुद से प्रसिद्ध हुआ। असमीया भाषा की एक बुरंजी (हस्तलिखित इतिहास ग्रन्थ) से विदित होता है कि उसने शक सं १९४६ (ईसवी १२४४) में राज्य ग्रहण किया।

रत्नध्वज ने राजा भद्रसेन को परास्त कर के एक नया नगर बसाया जिस का नाम रत्नपुर रखा। उस के पराक्रम ने उस के राज्य का बहुत विस्तार किया। बुरंजी के अनुसार गौड़ के सुल्तान जलालुद्दीन मसूद शाह ने भी उस से मैत्री स्थापित की और सुल्तान ने उस समय समय पर गंगाजल भेजना स्वीकार किया और गौड़ में पढ़ने को परगुराम कुण्ड का पानी चाहा।

रत्नध्वज का एक पुत्र उस समय गौड़ में गौड़ेश्वर राजा के पास शिक्षा के लिए रहता था। इस कुमार की वहाँ ही मृत्यु हो गयी। सुल्तान ब्राह्मणों की दाह-संस्कार विधि से अनभिज्ञ होने के कारण गौड़ेश्वर

ने कुमार का शव उसके पिता के पास भेजने का निश्चय किया। रत्नध्वज तब सदिया के तट पर सिद्धुक्षेत्र में एक नया महल बनवा रहा था। यहीं सिद्धुक्षेत्र में कुमार का शव उस दिया गया, और इसी घटना के कारण उस स्थान का नाम स दिया (जहाँ शव दिया गया) पड़ गया। तब से यही नाम प्रचलित है।

वर्तमान देवरिया सुत्यिया जाति के लोग अपने को क्षत्रिय बताते हैं। सम्भव है कि 'सुत्यिया' भी 'क्षत्रिय' से बना हो। जो हो उन की भाषा में हिन्दी संस्कृत शब्द प्रभूत हैं, और बुरंजी में लिखा है कि जब सुत्यिया बर्मा से असम आये तब केवल उन्हीं के पास लिपि थी, जिस से सिद्ध होता है कि यह जाति साक्षर और संस्कृत थी। अब भी देवरिया जाति उच्च जाति मानी जाती है और उन के घरों में हर कोई प्रवेश भी नहीं पा सकता।

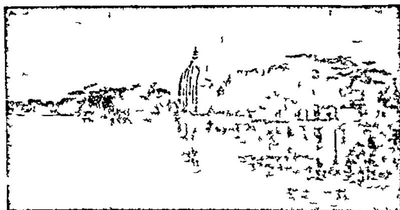
सुत्यिया राजा तान्त्रिक थे, और उन के बनवाये हुए ताम्रेश्वरी देवी के मन्दिर के अवशिष्ट अंश भी सदिया के उत्तर में पाये जाते हैं। सन् १८४८ में एक अंग्रेज यात्री ने यह मंदिर देखा था उस का ताँबे का कलश तब टूट कर अलग पड़ा हुआ था। अब यह प्रदेश जंगल ने लील लिया है। अनुमान किया जाता है कि पहले ब्रह्मपुत्र की धारा यहीं बहती थी, उस का पाट क्रमशः दक्षिण को हटता गया और जल दुर्लभ होने से उत्तरी प्रदेश उजड़ते गये। कालान्तर में अहोम आक्रमणों से परास्त होने पर सुत्यियों का वैभव मिट ही गया, तब ये उत्तरी प्रदेश जंगल के आक्रमण को भी न रोक सके और डूब गये। असम में अन्यत्र कई स्थानों पर ऐसा हुआ है।[२]

* * * *

गाड़ी तिनसुकिया तक नहीं पहुँचा। डुमदुमा से कुछ आगे ईंजन की शक्ति समाप्त हो गया, एंजिन बन्द हो गया। शायोमो में सफाई

२ सन् १९५० के भूकम्प से सदिया और सदिया के निकट उससे मिलनेवाली डिहांग की धाराओं में अनेक परिवर्तन हुए हैं। जिस शृंग के कारण ब्रह्मपुत्र में वह आवर्त्त बना था जो परशुराम कुंड था, वह शृंग भी धँस गया है, कुंड अब नहीं है। —ले०

आदि कर के जो काम चलाऊ प्रयोग किये जा सकते थे, किये गये, पर व्यर्थ। अन्त में एक अमरीकी ट्रक के पीछे जुत कर घिसटते हुए तिनसुकिया पहुँचे, जहाँ तीन चार दिन गाड़ी ठीक ठाक कराने में लग गये।



शिवसागर

तिनसुकिया रेल का जंक्शन है। यहाँ से एक लाइन तो सीधा मेखुआ घाट चली गयी है, एक और पूरब को मुड़ कर डिगबई के तैलक्षेत्र को पार कर के मार्गरिटा और लेडो जाती है जहाँ से बर्मा चीन वाली सड़क का आरम्भ होता है। प्रस्तुत प्रसंग में उस क्षेत्र का वर्णन अनावश्यक है।

यों तो यह यात्रा विचार यहीं से आगे अप्रासंगिक हो जाती, क्योंकि तिनसुकिया से दिब्रूगढ़ लौटकर यायावर ने अपना कार्यसूत्र फिर पकड़ा, और उस तन्तु का एक प्रकार की मकड़ी अपने झूलते सूत के सहारे पेड़ पर चढ़ जाती है और फिर झूलती है, वैसे ही उस के सहारे क्रमशः अपने केन्द्र शिलङ जा पहुँचा जहाँ से फिर नया अभियान आरम्भ हुआ। किन्तु एकाधिक दिनों में ही सही, परशुराम कुण्ड से उत्तर पश्चिम की यात्रा धीरे धीरे अग्रसर होती ही रही, और यहाँ दफ्तर आदि गौण बातों को छोड़ कर भ्रमण के मुख्य विषय को ही लिये रहना अभीष्ट है।

शिवसागर।

बँगला में स, श, ष, सब का जैसे 'श' उच्चारण होता है, वैसे असमाया में सब 'ह' हो जाते हैं। इसी लिए 'शिवसागर' को 'हिवहागर' उच्चारित होता है (यद्यपि अंग्रेजी स्पेलिंग उच्चारण 'सिवसागर' के प्रभाव से वैसा उच्चारण असमीयों में भी फैलता रहा है)। यह नगरी एक बड़े ताल के किनारे बसी है जो अहोम राजत्वकाल में बना था, और इसलिए एक अचरज माना जाता है कि उस का तल आसपास के प्रदेश से लगभग तीस फुट ऊँचा है, फिर भी ताल सदा भरा रहता है—यद्यपि उस का तल भी लगभग एक सा रहता है। इसी सागर के किनारे तीन मन्दिर हैं और यहाँ से जोरहाट के रास्ते पर रुद्रसागर और जयसागर के किनारे और मन्दिर और महल भी। शिवसिंह और रुद्रसिंह प्रतापी अहोम राजा थे, और जयमती एक वीर नारी जिस का नाम असम का बच्चा बच्चा जानता है और जिस का चरित असमायों को उत्कट देश-प्रेम का पाठ सिखाता है।

जोरहाट—नवगाँव—गौहाटी। गौहाटी वास्तव में 'गुवा हाटी' है—असमाया सुपारी (गुवाक) की प्रसिद्ध प्राचीन हाट। यह असमाया कामरूप राज्य की राजधानी और प्रमुख व्यापार केन्द्र तो रही ही, इसके अतिरिक्त नीलाचल पर स्थित कामाख्या देवी के मन्दिर के कारण इस की कीर्ति और भी फैली। असमाया लोग तो निराकारोपासक वैष्णव हैं, पर कामाख्या के दर्शन के लिए हजारों बंगाली प्रति वर्ष आते हैं। दर्शनार्थियों को देख कर पंडों का जो झुंड उन पर टूटता है, वह बंगला शब्दों की ध्वनि पड़ते ही छतभैयों की तरह मुखर उत्साह प्रदर्शित करने लगता है, किन्तु अन्य भाषाओं को सुन कर अप्रतिभ हो कर प्राय कहता है, 'अरे एरा तो बाँगाली नय!'—अरे ये तो बंगाली नहीं हैं! और असमाया भाषा सुन कर तो पंडावृन्द वहीं ही आहत हो जाता है जैसे प्रभात के समय का छोटा उल्लू।

❀ ❀ ❀

मध्य असम से पंजाब

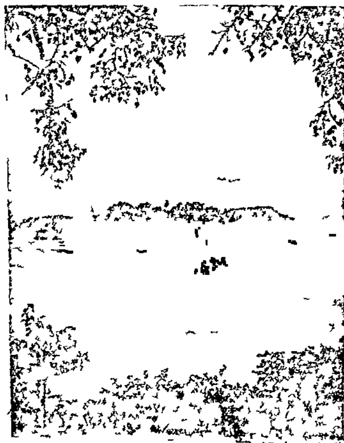
यायावर को आज्ञा मिली कि पाँच गाड़ियों का 'कानवाइ' ले कर असम से पंजाब जाय—असम से उस का छोटी-सा टोली का स्थानान्तरित किया जा रहा था और भविष्य में उस का कार्य क्षेत्र पंजाब और सीमाप्रान्त में होगा।

यों तो तैयारियाँ सभी तरह की होती हैं, पर उन में 'कानवाइ' की तैयारी का एक विशिष्ट स्थान होता है—ठीक वैसे, जैसे बुखारों में मलेरिया बुखार का। इतना कह कर उस के विशद वर्णन को छोड़ देना चाहिए—क्योंकि आखिर तो वह तैयारी ही है न, स्वयं अभियान तो नहीं।

अप्रैल के एक गर्म दिन भोर होते ही 'लाद चला बनजारा'। अभी शुरू हुआ था, वर्षा के कारण और भी फीका। यायावर का मन स्तब्ध था। उसके लिए सब रैन बसेरे हैं, कहीं यात्रान्त तो है ही नहीं, इस लिए कहीं से चलने पर उदास होना निरर्थक है, किन्तु किसी किसी पड़ाव पर जो शान्ति और स्नेह मिल जाता है, उस का आकर्षण तो बना ही रहता है रहे, मगर राह पर आज जो मिला उस आज की लब्धि नहीं कल का पाथेय मानना होगा और चलना होगा चल यायावर चल! 'जहाँ भी कोई चला जाय, वहीं कोई हरी भरी पहाड़ी मिल जायगी! कल का पाथेय मिला है तो कृतज्ञ हो प्रणाम कर, और आगे बढ़!

शिलांग से पहले उतार का घाट था। घाटियों से निकल कर बड़ा पानी नदी पर करके चल खुली हरियाली का पहाड़ियों में बजरी की सड़क लहराने लगी, तब कहीं जा कर यायावर का मन चेता, और चेत कर आगे को उन्मुख हो गया। गौहाटी पार कर के नीलाचल की

छाया म हाते हुए 'कानवान' पगाडगाना ना निकला, जा असमीया रेशम
ना ना मना है आर फिर नाहिने को ब्रह्मपुत्र और नाय का ससिया



गौहाटी म ब्रह्मपुत्र का दृश्य
(मामने उनशी माम और उमानन्द भैरव का द्वीप)

पयत से आा हुइ गारा पनत श्रेणी रगते हुए न कर ग्यालपारा जा

रखा। यहीं से कुछ आगे जोगी गुफा का घाट है, जहाँ नाव पर लाद कर गाड़ियाँ ब्रह्मपुत्र के पार उतारी जायँगी और कूचबिहार का रास्ता पकड़ेंगी। रात ग्वालपाड़े में ब्रह्मपुत्र के किनारे एक टापू पर बने हुए बँगले में काटी, और सवेरे जोगीगुफा के घाट पर जा पहुँचे। जोगीगुफा नाम का इतिहास है। आस पास का वन प्रदेश तांत्रिकों की साधना का क्षेत्र था और यहाँ उनकी अनेक गुफाएँ हैं। यह भी प्रसिद्धि है कि तेरहवीं शती के आरम्भ में जब तुर्कों ने बिहार से बढ़ कर कामरूप पर आक्रमण किया, तब इन्हीं गुफाओं में रहनेवाले तांत्रिकों के अभिचार से उनकी पराजय हुई। इस प्रसिद्धि की ऐतिहासिकता का कोई दावा नहीं। इतना अवश्य है कि ब्रह्मपुत्र के दाहिने तट पर बसी तत्कालीन राजधानी पर अधिकार कर के जब मलिक उजबक नद की बाढ़ से बचने के लिए बायें किनारे की पहाड़ियों से लगे-लगे नदी के प्रवाह की ओर उतरने लगा, तब सारी पहाड़ियों की तलहटियों में ही उसकी सेना भटक गयी। तुर्क इतिहासकार मिनहाज ने मलिक उजबक के अभियान का वर्णन करते हुए लिखा है कि देश में कृषि की उन्नत और सम्पन्न अवस्था देख कर मलिक उजबक ने अन्न भर रखना आवश्यक नहीं समझा था। जब चैत का कटनी का समय आया तब राजा और सारी प्रजा ने विद्रोह कर दिया और सब बाँध खोल दिये। मलिक उजबक और उसकी सेना असमर्थ हो गयी और भूखों मरने लगी। तब उसने पीठ हटने का निश्चय किया। समतल प्रदेश में पानी भरा था और हिन्दू बसते थे, (अतः) मुसलमानों ने एक पथदर्शक को ले कर पहाड़ों की तलहटी से हो कर जाने की सोचा। किन्तु कुछ पड़ाव जा कर वे सँकरी पगडंडियों और घाटियों में खो गये। सहसा सामने और पीछे हिन्दुओं ने आक्रमण किया। एक तंग घाटी में सामने हाथियों का लगा हुई मुसलमान सेना के पैर उखड़ गये और हिन्दू-मुसलमान गुत्थमगुत्था हो गये। तभी हाथी पर सवार मलिक उजबक को तीर लगा, वह गिरा और बन्दी कर लिया गया। फिर उसके परिवार के सब लोग और सारी सेना बन्दी कर ली

गया।' यह 'दुर्घटना' चाहे तान्त्रिका के प्रताप से हुई हो चाहे नहीं, इस में सन्देह नहीं कि घाटी में से जाती हुई सेना पर आक्रमण आसपास की पहाड़ियों की गुफाओं से बड़ी सफलता के साथ किया जा सकता है, और सम्भवतया किया गया होगा, तभी तो दिनदर्क की सेना 'सहसा' आगे पीछे से आक्रान्त हो कर परास्त हो गयी होगी।

योगीगुफा से नद पार कर के एक रास्ता धुबड़ी हो कर कलकत्ते का है, किन्तु यह अच्छा नहीं है और 'वानगाड़ी' अच्छी सड़कों पर ही चलते हैं जब तक कि लाचारी न हो, इस लिए कूचबिहार की सड़क पकड़ी गयी। तीसरे पहर तक 'वानगाड़' कूचबिहार की सीमा में प्रविष्ट हो गया था। कूचबिहार पहुँचा जा सकता था, किन्तु रात में बड़े शहर में ठहरने की जगह का कष्ट हो सकता है यह सब यायावर जानते हैं। अतः कुछ पहले ही दीनहट्टा के छोटे सफरी बँगले के आगे गाड़ियाँ रोक दी गयीं। बँगला तो बाँसों का बना हुआ 'ढाबा' ही था और कमरों में जगह भी नहीं थी, पर बरामदे के कच्चे फर्श पर बाँस की चटाइयाँ बिछीं थीं, और चारों तरफ खुला बगीचा भी था। रात काटने के लिए और क्या चाहिए? इधर प्रायः दिन छिप ही हाट लगता है, दीनहट्टा का बाजार अभी उठा नहीं था, केले, शाक तरकारी, अंडे आदि बिक रहे थे।

सवेरे कूचबिहार से गुजरे। छोटी सी सुन्दर नगरी है। नाम वास्तव में कोचबिहार होना चाहिए, क्योंकि कोच जाति की राजधानी है। किसी समय कोच साम्राज्य बहुत फैला हुआ था और उस की धाक दूर दूर तक थी। कोच राजवंश में कई प्रतापी राजा हुए, जिन में नरनारायण (ई० सोलहवीं शती) सब प्रसिद्ध है। नरनारायण तथा उस के भाई एवं प्रधान सेनापति शुक्लध्वज ने आसाम पर आक्रमण कर के बहुत-सा प्रदेश जीत लिया था। शुक्लध्वज के दूर-दूर जा कर झपट्टा मारने के करतबों के कारण उस का नाम 'चील राय' पड़ गया था। एक दूसरे भाई कमल गोहाइ (गोसाईं) ने उत्तरी आसाम के आर पार वह सड़क बनवायी थी जिस के

अवशेष कुछ वर्ष पहले तक मिलते थे और जो कूचबिहार से सन्यासी तक जाती थी। अब वह सड़क टूफान गंज में खो गया है और उस प्रदेश में कोई सड़क रहा ही नहीं। सन्यासी जाने के लिए इशपुर पार कर के नदी किनारे से जाना पड़ता है। और सैखुआ में फिर गाडिनी पार जाते हैं।

नरनारायण और उसके भाइयों ने काशी में शिक्षा पायी थी। राजा होने पर नरनारायण के विद्याप्रेम की कीर्ति फैलने लगी और दूर-दूर से विद्वान् उस की सभा में आने लगे। कोच राज्यवंश तो सनातन मतावलम्बी था किन्तु नरनारायण की कीर्ति सुन बंगाल के स्मार्त आचार्य रघुनन्दन भट्टाचार्य भी वहाँ पहुँचे। भट्टाचार्य महोदय शास्त्रार्थ प्रवीण थे, और बंगाल, बिहार, उड़ीसा के बहुत से पंडितों को परास्त कर चुके थे। उन का सहज स्मार्त मत इस भू भाग में बहुत प्रचलित भी हो गया था। कोच राज सभा में समादृत होने पर कोच साम्राज्य भी उन का अनुयायी हो जायगा, इस की उन्हें पूरी आशा थी। दैवात् कोच राज पुरोहित सार्वभौम भट्टाचार्य का देहान्त कुछ ही मास पहले हो चुका था, इस लिए विरोध की कोई आशंका भी न थी।

किन्तु सार्वभौम की विधवा ने राजसभा में कहला भेजा कि विद्वत् पति की प्रतिष्ठा के लिए वही स्मार्त आचार्य से शास्त्रार्थ करेगी। राजा ने तदनुसार शास्त्रार्थ का दिन और समय नियत कर दिया, और राज्य के विद्वानों को निमन्त्रण भेज दिये गए।

एक विधवा का इतना साहस! रघुनन्दन पंडित ने इस बाधा को क्षुद्र माना। राजसभा में शास्त्रार्थ करने में समय क्यों नष्ट किया जाय यह सोच कर नियत दिन से पहले दिन वे स्वयं ब्राह्मणी के घर पर पहुँचे। वहाँ पर नियत हो गया, सभा उन की निरपराध अभिसन्धि की साक्षी होगी।

ब्राह्मणी ने उन्हें उन के धर्म के साथ अपना स्मार्त अनुष्ठान पद्धति समझाई। स्मार्त पद्धति न केवल सरल और लोकरम्य है, वरन् वही एकमात्र ठीक पद्धति है, इस मत का प्रतिपादन कर वे चुके, तब विधवा ने पूछा, 'आचार्य जो पद्धति बता रहे हैं, उस में भिन्न अनुष्ठान मान्य

होंगे या नहीं और प्राचीन मतानुसार दाक्षित ब्राह्मण कुलीन ब्राह्मण माना जायगा या नहीं ?" रघुनन्दन ने निश्शंक भाव से कहा, 'नहीं, ऐसे अनुष्ठान मान्य नहीं होंगे, और प्राचीन मतानुसार दान पानेवाला ब्राह्मण भ्रष्ट होगा।'

ब्राह्मण ने पूछा 'अच्छा तो ऐसे ब्राह्मण का विधान क्या मान्य होगा ?'

रघुनन्दन पण्डित ने शास्त्र से प्रमाण दे कर सिद्ध किया कि ऐसे भ्रष्ट ब्राह्मण का विधान स्पष्टतया अमान्य है।

तब सार्वभौम का शिष्य तनिक मुस्कराया। बोला, 'आचार्य के माता पिता का विवाह तो आचार्य के अनुष्ठान पद्धति के अनुसार न हुआ होगा ? उन के पिता की दीक्षा भी प्राचीन पद्धति के अनुसार हो हुई होगी ? तो भ्रष्ट कुलोत्पन्न ब्राह्मण का मत क्या मान्य समझा जायगा ?'

अगले दिन जब राजसभा में शास्त्रार्थ आरम्भ करने का समय आया, तो रघुनन्दन भट्टाचार्य कहीं न दीखे।

कोच साम्राज्य का प्रसार मणिपुर तक हुआ था—कम से कम मणिपुर, जयन्ती, त्रिपुरा आदि के राजा कोच सम्राट् को वार्षिक कर तो देते ही थे। नरनारायण ने कामाख्या के मन्दिर का पुनर्निर्माण कराया था। कुछ ही काल पीछे कालापहाड़ ने आ कर मन्दिर का ध्वंस किया, किन्तु उस के (चाहे उड़ीसा के विद्रोह के कारण, चाहे नरनारायण और अहोम राय के संयुक्त सैन्य समूह से डर कर) चले जाने पर मन्दिर फिर बनवाया गया और नरनारायण तथा चील राय ने उस की प्रतिष्ठा की। इस आशय का एक प्रस्तर लेख भी कामाख्या के मन्दिर में है, जिस का समय शक १४८७ दिया है।

कूचबिहार से सिलिगुड़ी का मार्ग जब 'द्वार प्रदेश' से गुज़रता है तब उस की शोभा अनूठी हो जाती है। इस अंचल में हिमालय के बाहर द्वार' हैं इन्हीं द्वारों से भोटिये, नगाड़े, तिब्बती और पर्वतीय नाना जातियों के लोग भारत में आते-जाते थे—कुछ तीर्थ करने, कुछ व्यापारी, कुछ भूलोलुप, कुछ दयाकांक्षी, कुछ लुटेरे द्वार प्रदेश में अब भी

कई स्थलों पर भोट मेले लगते हैं। चाय के बगानों की इस प्रदेश में भरमार है ज्यों ज्यों पथ पश्चिम की दार्जिलिंग पर्वत मूल की ओर बढ़ता है, त्यों त्यों चाय के नए छंद, नने सँवरे पौधों के पीछे हिमालय का नयी नयी हिमाच्छादित चोटियों का भव्यतर रूप सामने आता जाता है। उस दृश्य के अनिर्वचनीय सौन्दर्य को वही जान सकता है जो बार बार उस की अल्हार निरपेक्ष भव्यता को अकस्मात् थप्पड़-सा खा कर लड़खड़ाया हो और फिर सँभला हो और जिसने वस थपड़े नहीं खाये, वह उस कवि हृदय में पैठ कर उसके सत्य को अपना भी नहीं सकता जिस की अनुभूति ने वाणी पा कर कहा होगा—

हिरण्यगर्भ समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

द्वार प्रदेश का एक केन्द्र है अलीपुर द्वार। वहाँ से आगे और पाँच रास्ते पार करते यायावर की टोली तिस्ता नदी के पुल की ओर बढ़ी। इस दुर्दम नदी पर रेलवे पुल बनाने के लिए सड़क बहुत ऊँची चढ़ी है और पुल न केवल एक दर्शनीय स्थल है वरन् इंजिनियरी विद्या का एक नया करिश्मा भी है। पुल कंकरीट का है, आसपास दोनों ओर कुछ मील तक सड़क भी कंकरीट का बनाया गया है कि जिस में बरसात बह न जाय। पुल से ही एक रास्ता कलिम्पोंग के लिए अलग हो जाता है। 'कानवाय' नदी साधारण से मार्ग और चढ़ाव उतार लाँघता हुआ पुल पार कर के दिन छिपते सिलिगुड़ी जा पहुँचा। सड़क से दो मील पहले ही एक खुले मैदान में सैकड़ों फौजी गाड़ियों का डेरा था—यही चकलू कैम्प था। यहाँ यायावर का 'कानवाई' भी एक तरफ करने से जा लगा हुआ सब ने उतर कर दाँग सीधी कीं और फिर कुछ खान-पान की खोज में निकले।

यों सिलिगुड़ी से पूर्णिया का रास्ता जाता है और वहाँ से फिर द्वार हो कर फिर वहीं स्टीमर से गंगा पार की जा सकती है। इधर से एक नया फौजी मार्ग बना था जो 'असम एप्रोच रोड' कहलाता था और जो दरभंगा के पास 'ग्रांड ट्रंक रोड' में जा मिलता थी। किन्तु इस

सड़क की अवस्था के बारे में जो कुछ पता चला था उस के आधार पर यही निश्चय किया गया कि सिलिगुडी से ट्रेन में लद कर कलकत्ते जाया जाय, और वहां से फिर सड़क पकड़ी जाय। अतः डेढ़ दिन की दौड़ धूप के बाद वैसी ही व्यवस्था कर ली गयी। एक फौजी मालगाड़ी तीसरी रात को छूटने वाली थी सवेरे ही 'कानवाइ' की मोटरों को रेल-ठेलों पर लाद दिया गया। पूरी मालगाड़ी कनवाय मोटरें ले जाने वाले ठेलों की थी—आगे आठ दस गाड़ियाँ एम्बुलेन्स की लगी थीं, फिर एक अमरीकी टोली जिस में दो तीन 'जीप' और आठ दस बड़े ट्रक थे और चालकों में कुछ गोरे अमरीकी और बाकी नीग्रो। सवेरे होते ही गोरों ने ग्रामोफोन पर भड़भड़ाते तेज नाचों के तवे चढ़ा दिये थे और नीग्रो ने वैसा ठुन ठुना कर गाना और हँसना शुरू किया था। आकर्ण आँखों की बात कवियों में बहुत चलती है, असल में आकर्ण तो हँसी होती है जो नीग्रो हँसता है। बहुत ही स्वच्छ आकाश में जैसे दूज-तीज को चाँद के उजले चक के ऊपर कभी कभी झांवा हुआ सा पूरा चाँद भी दीखता है, वैसे ही हँसते नीग्रो चेहरे में दाँतों की पाँती चमकती है। इन के बाद यायावर की गाड़ी, फिर कुछ गोरे फौजी कुछ ट्रकों के साथ, एक-आध आहत ट्रक, और फिर सैकड़ों छोटी बड़ी टूटी फूटी लथपथ गाड़ियाँ—जिन में प्रायः केवल नम्बर ही नाइनर थे।

रात ग्यारह के आस पास बहुत देर तक गड़गड़ाने और हिचकियाँ लेने के बाद गाड़ी चल पड़ी। खुले ठेले थे, गर्मी का मौसम, ट्रक की पीठ में सटा कर कैंजरी खाट लगा कर यायावर लेट गया और तारे देखने लगा। एंजिन के कोयले आँखों में भरने लगे। गाड़ी की गति बढ़ी तो सब कपड़े इतनी जोर से फड़फड़ाने लगे कि नींद असम्भव थी, और चाल धीमी पड़ती तो मच्छर नोंगियाँ नाचने लगते। हवा के कारण मसहरी नहीं लग सकती थी दिन भर मनाया था कि रात हो तो गाड़ी चले, स्टेशन यार्ड की भीड़ में से निकल कर सोया जाय, रात भर मनाते बीती कि सवेरा हो तो मच्छरों से निस्तार हो!

दिन हुआ। यायावर ने सोचा कि अब कहीं गाड़ी खड़ी होगी तो मुँह हाथ धो कर कुछ खाने की सोची जायगा पर गाड़ी खड़ी होनी तो छोटे स्टेशन पर या बड़े स्टेशन के पास पहुँचती हुई पर स्टेशन से एक डेढ़ मील बाहर ही। सुराही में थोड़ा सा पानी रखा गया था, उसी से काम चलाया गया। चाय के लिए स्टोव जलाना असम्भव था—इतनी आड़ नहीं थी, और खड़ी गाड़ी में जलाते तो पानी खौलने से पहले गाड़ी चल पड़ती। अमरीकियों की देखादेखी एंजिन से तामचीना के मग में गर्म पानी ले कर उसी में चाय की पत्ती, और डिब्बे का दूध मिलाया चाय में किसी चीज़ का स्वाद था तो धुँए का

दिन भर गाड़ी खिसकती रहा। फिर कि बदली घिर आती। मिन्नता के बाद शाम हुई और बादल घिरने लगे। थोड़ी देर में वर्षा आरम्भ हो गयी। फिर कुछ देर बाद मूसल बरसने लगे। माल पत्तर सब ट्रक *में लाद दिया गया था—आशा थी कि रात में ही कभी बैरकपुर पहुँच* जायँगे जहाँ उतर कर कैम्प में रात रहना होगा। भीगते भीगते यायावर को उस बाद का कहानी याद आया जो गर्भिन घोड़ी का हाँकता हुआ चला जा रहा था थक कर सोचने लगा कि यहाँ एक घोड़ा होता तो क्यों उसे घोड़ा हाँकते पैदल चलना पड़ता। राह में ही घोड़ी ब्या गयी। जाड़े न बछड़े को कंधे पर लादा और फिर चला तब लम्बी साँस ले कर खुदा की ओर मुखातिब हो कर बोला, 'वाह रे सखा-सवेरा, तेरी उल्टी अक्ल का बलिहारी—माँगा था नाच, दे दिया ऊपर!'

[illegible]पुर पहुँचे। अर्थात् बैरकपुर के पास नहीं सुनसान में एक सार्डिंग पर गाड़ी लग [illegible]। वहाँ भी हो, [illegible] से उतरना तो है ही —[illegible]। जो पाठ है वे क्या मामले [illegible] को सोचने का मौका देंगे? [illegible] उतार [illegible]। [illegible] होता तो है [illegible] होगा सो होगा, बरसने दो मूसल!

तभी एक [illegible] 'सानदार' के पास आ कर [illegible], और [illegible] पुलिस के [illegible]। [illegible] के [illegible] का ऊपर कैम्प का था, वहाँ रहने

खाने का प्रबन्ध है और वे दोनों मार्ग दिखायेंगे—कैम्प कोई चार मील है।

तो सुरा सवेरा कभी कभी नाचे माँगने पर नाचे भी देता है! अल्हम्दुलिल्लाह!

* * * *

अँधेरे और वृष्टि में कोई ट्रक भटक न जाय, इस विचार से सब गाड़ियों को आगे रख कर अन्तिम गाड़ी यायावर ने अपना रखा। अगले ड्राइवर को कहा गया कि वह जीप के पीछे हो ले और उसे आँखों-ओट न होने दे।

गाड़ी फिर चला। एक मील, दो मील, तीन मील चार मील—अब तो कैम्प पास ही होगा। 'कानवाइ' रुका—क्या आ गये? पाँच मील। फिर साठ—यह होगा। शायद बड़े मैदान में कैम्प हो। छ मील। सात मील। आठ मील। नौ मील दस—दसवें मील में हठात् 'कानवाइ' रुक गया। सन्नाटा—केवल किरमिच पर मूसलधार वृष्टि का शब्द, टप टप-टप, दनादन दन।

यायावर लाइन तोड़ कर आगे गया। अगली गाड़ी का ड्राइवर निश्चिन्त बैठा था सामने जीप नहीं थी।

"क्या हुआ?"

"जीप गाड़ी तो खो गिया, साहब!"

"कैसे खो गया? तुम्हारा ध्यान किधर था?"

"आप वाला या गाड़ी का पीछू लाल बत्ती देखते रहने का। हम देखा लेकिन फिर वो अँधेरा में गुम हो गया। फिर हम सोचा आगे मिलेगा। लेकिन इधर रास्ता बन्द है।"

अब? अब कहीं मुड़ना तो और भटक जाना होगा, उचित यही है कि यहीं पर प्रतीक्षा की जाय। जीप स्वयं खोजने आयेगा अवश्य

डेढ़ घंटे बाद वह आया। गोराशाही भाषा में या बहुत से शब्द ऐसे होते हैं जिन्हें कोशकार जानते ही नहीं कुछ ऐसे होते हैं जिन्हें वे

शायद इसीलिए कोश में नहीं देते कि सारा कोश फीका न जान पड़ने लगे। ऐसे ही चाशनीदार बहुत से शब्द ड्राइवर पर उँडेल कर सार्जेण्ट ने यायावर को 'कानवाइ' लीडरान को कहा और सुझाया कि अब की यायावर स्वयं आगे रहे ताकि अनुसरण ठीक हो सके। वैसा ही किया गया। रात साढ़े बारह बजे कैम्प के भीतर घुसे। रास्ते एक-एक फुट पानी के नीचे थे, बाँसों के फर्श कीचड़ हो रहे थे। खाना जो रखा गया था सो न जाने क्या हुआ क्योंकि लंगर वाले तो अब सो गये थे। एक बारक खाली पड़ी थी, उसी में कुछ बाँसों से पटे तख्त भी थे।

खाना न सही, गीले कपड़े बदल कर पीठ तो सीधी की जाय, यायावर यह सोच ही रहा था कि सूचना मिली, 'कानवाइ' की पिछली गाड़ी नहीं आयी है।

यायावर की गाड़ी फिर बाहर निकली—अकेली। जो गाड़ी रह गयी थी, उस का नेपाली ड्राइवर यथेष्ट सूझ था—अतः जहाँ उसने जाना होगा कि वह भटक गया, वहीं रुक तो गया होगा पर उसके बाद भी गाड़ी के साथ ही रहेगा इसका भरोसा नहीं था। कहीं पास किसी बस्ती में साझी हो सकता हो या चाय के ही एक कुल्हड़ की आशा हो तो वह गाड़ी छोड़ कर चल देगा। और कहीं कलवारी की गन्ध आसपास मिल गयी तो बस

कैम्प से स्टेशन तक दो चक्कर लगे। गाड़ी का पता न मिला। तीसरे चक्कर में रास्ता छोड़ कर इधर उधर के मार्गों की ओर गलियों की खोज की गयी। यायावर लगभग निराश हो चला था कि एक अहाते के बाहर [illegible] गाड़ी के पीछे एक दूसरा ट्रक खड़ा जिस की रेखाकृति कुछ पहचानी-सी लगी। फिर देखा अनुमान ठीक था। ड्राइवर ने हताश हो कर या ज्ञान का निश्चय किया था पर जैसे लद्दू घोड़े को दूसरे घोड़े की पूँछ के अतिरिक्त और क्षितिज स्वीकार्य नहीं होता, वैसे ही 'कानवाइ' ड्राइवर भी दूसरे ट्रक के पीछे लग कर ही चैन की साँस